सपनों की औकात

डॉ. कनक लता

जन्म:10 जनवरी 1978
मैनपुरी. उत्तर प्रदेश

शिक्षा: एम.ए., एम.फिल
पी.एच.डी–हिंदी

पुरस्कार:
स्त्रियों से संबंधित लेखों के लिए समयांतर की ओर से 'लक्ष्मी देवी' अवार्ड

कृतियां: :
सावित्रीबाई फुले : देश की पहली अध्यापिका का जीवन संघर्ष एवं विभिन्न पत्र–पत्रिकाओं में शोध लेख प्रकाशित। कहानी, कविता व संस्मरण पर काम।

संपर्क : डॉक पत्थर, देहरादून, उत्तराखंड
फोन : 9899795774

"अरे सुनीता, ये बच्चे जिस समाज के हैं, यदि वे भी बड़े सपने देखने लगेंगे, तो हमारे समाज के लिए खतरा पैदाकर देंगें। फिर हमारे बच्चों का और हमारे समाज का क्या होगा? वैसे भी इन आरक्षणवालों के कारण हर चीज पर हमारा अधिकार आधा रह गया है... इसलिए यही अच्छा होगा किये बच्चे केवल सफ़ाई कर्मी या किसान बनने का ही सपना देखें। हमारे लिए भी यही ठीक है और इनके लिए भी यही ठीक होगा... समाज में इससे शांति और संतुलन बना रहता है। मैंने इसीलिए उनको कोई और सपना देखने से रोका।" सुरेश बलूनी ने एकदम बेबाकी से कहा, सुनीता हैरान थी

"लेकिन हमारी संस्था तो शिक्षा के लिए काम करती है ना? ...और हम वहां बच्चों को सपने देखने के लिए प्रेरित करने की बात भी करते हैं...! ...तो फिर मुझे यह समझ में नहीं आया कि बच्चों को सपने देखने से क्यों रोक रहे हैं आप?" सुनीता की जिज्ञासा कम होने का नाम नहीं ले रही थी।

वंचित–दलित समाज की सुनीता दिल्ली विश्वविद्यालय की एक अच्छी छात्रा थी, जैसाकि उसके टीचर और प्रोफेसर कहा करते थे। उसने पढ़ाई करते हुए वहीं से पीएच.डी. की थी और कुछ समय तक अस्थाई रूप से वहाँ पढ़ाया भी। उसके अभिभावकों और अध्यापकों को उससे काफी उम्मीदें थीं। उसने शिक्षा, यानी पढ़ने–पढ़ाने, को ही अपना ध्येय बनाया और उसी क्षेत्र में आगे बढ़ने और उसी के माध्यम से अपने शोषित–वंचित–समाज से जुड़ने और उसके लिए काम करने का निश्चय किया, जोकि उसका हमेशा से सपना था...।

सवर्णी–नियंत्रण में काम करने वाली सरकारी–नीतियों के चलते देशभर में लगातार कम होती नौकरियों के कारण कॉलेजों और विश्वविद्यालयों में इसके अवसर काफी कम हो गए थे। साथ ही, नियुक्तियों में बढ़ते भाई–भतीजावाद, वंचितों में हनुमानवृत्ति को बढ़ावा देने और पैसे के खेल ने इस मुश्किल को और बढ़ा दिया, जहाँ किसी 'गॉडफादर' के वरद्–हस्त के बिना और वंचितों के मामले में तो 'हनुमानवृत्ति' को अपनाए बिना आगे बढ़ना मुश्किल होता गया।

इसी बीच कुछ दोस्तों, शुभचिंतकों

और परिवार के सदस्यों ने शिक्षा के क्षेत्र में काम करनेवाली किसी सामाजिक-संस्था में काम करने का सुझाव दिया। इससे उसके दोनों उद्देश्य पूरे हो सकते थे; एक तो शिक्षा के माध्यम से समाज के लिए संगठित रूप से कुछ करने की राह खुल सकती थी, दूसरे, करियर को भी एक सार्थक दिशा मिल सकती थी। उसने कई संस्थाओं के बारे में पता किया और काफी खोजबीन के बाद एक संस्था उसे अपने उद्देश्यों के अनुरूप लगी।

यह सामाजिक-संस्था विद्यालयी-शिक्षा के क्षेत्र में सरकार, शिक्षा-विभाग और सरकारी-स्कूलों के अध्यापकों-अध्यापिकाओं एवं विद्यार्थियों के साथ मिलकर काम करती थी, जिसका संचालन भारत की आईटी सेक्टर की एक बहुत प्रसिद्ध कंपनी कर रही थी। संस्था का दावा था कि दुनियाभर में जो गरीबी, लाचारी, अवैज्ञानिक-मनोवृत्तियाँ और जहालत मौजूद है, उसका कारण है शिक्षा का अभाव; इसीलिए उक्त संस्था ने शिक्षा के प्रचार-प्रसार को अपना लक्ष्य बनाया, ताकि वह भी एक बेहतर समाज बनाने की दिशा में सरकार का सहयोग कर सके। कई संस्थाओं की तरह "एजुकेशन फॉर सस्टेनेबल एंडइक्वेटेबल सोसाइटी" उसका भी नारा और ध्येय-वाक्य था। यह संस्था भारत के कई राज्यों में कार्य करती है, जिसमें देश की सरकारी-मशीनरी और शिक्षा-विभाग का सहयोग भी उसे प्राप्त है।

उक्त संस्था के रूप में सुनीता को जैसे एक मजबूत हाथ का सहारा मिल गया, जिसकी मदद से वह अपने लक्ष्य की ओर बढ़ सकती थी। आखिर उसका भी तो वही सपना था, जो उक्त संस्था के उद्देश्यों से मेल खाता था। उसने अपने उद्देश्य को संस्था के उद्देश्य के साथ मिला दिया और पूरे समर्पण-भाव से संस्था के साथ जुड़ गई, जिसके लिए वह लिखित परीक्षा और कई चरणों के इंटरव्यू देकर सेलेक्ट हुई थी। उसे उत्तराखंड के पौड़ी जिले में नियुक्ति मिली।

...पौड़ी शहर मध्य-हिमालय के पहाड़ों पर बसा हुआ एक छोटा-सा बेहद खूबसूरत और शांत शहर है। इस शहर और जिले (यह जिला भी है) के आसपास सैकड़ों छोटे-छोटे गाँव और कस्बे आबाद हैं। 'आबाद' कहना अब तो तनिक मुश्किल ही है, क्योंकि बेहतर भविष्य की आशा में युवा-पीढ़ी की एक बड़ी आबादी यहाँ से शहरों या कुछ विकसित स्थानों की ओर पलायन कर गई है। यहाँ तेंदुओं, चीतों, जंगली खतरनाक शूअरों के हमलों ने भी लोगों को पलायन करने को मजबूर किया, क्योंकि तेंदुए जैसे खतरनाक जानवर लोगों और उनके पशुओं पर हमले करते और जंगली सूअर किसानों के खेतों को खोद डालते हैं, लोगों पर हमले भी करते।

वैसे पौड़ी की सामाजिक-सांस्कृतिक, शैक्षणिक और आर्थिक स्थिति को देखते हुए शहर की बजाय एक कस्बा कहना ज्यादा ठीक होगा। यहाँ से हिमालय के विहंगम स्वरूप का नजारा किसी के भी मन को बाँध लेने के लिए काफी है। दूर-दूर से सैलानी इस विहंगम दृश्य के दर्शन करने आते, हालाँकि अभी इस शहर की भनक पहाड़ के बाहर की दुनिया को उतनी नहीं लगी थी, जितनी अन्य प्रसिद्ध हिल-स्टेशनों के बारे में जानकारी थी। इसीलिए कूड़ा-करकट, गंदगी और भीड़भाड़ के मामले में अभी इसका वह बुरा हाल नहीं हुआ था, जो अन्य प्रसिद्ध हिल-स्टेशनों का था। सुनीता को इसी जगह पर रहते हुए काम करना था। प्रकृति के इस मनमोहक सान्निध्य में रहना और काम करना किसे अच्छा नहीं लगेगा। दिल्ली के दमघोंटू माहौल में रही सुनीता को जैसे बिना माँगे मनचाहा वरदान मिल गया था, जिसकी उसे उम्मीद भी नहीं थी।

पौड़ी में चूँकि अधिकाँश आबादी आर्थिक रूप से उतनी मजबूत नहीं थी, इसलिए यहाँ बच्चे प्रायः सरकारी-विद्यालयों में ही पढ़ते थे। वैसे संपन्न और आर्थिक रूप से कुछ सक्षम लोग और सरकारी कर्मचारी अपने बच्चों को अंग्रेजी माध्यम के प्राइवेट स्कूलों में ही पढ़ाते थे। सरकारी-विद्यालयों में अधिकांशतः वंचित या कमजोर समुदायों के ही बच्चे रह गये थे।

नगरपालिका द्वारा संचालित एक उच्च-प्राथमिक विद्यालय यानी छठवीं से आठवीं तक का... प्रायः सभी विद्यार्थी वंचित-तबकों के ही थे, शायद इक्का-दुक्का सामान्य वर्गों के भी... संस्था ज्वाइन करने के तीसरे दिन सुनीता वहाँ जाती है, विद्यालय के विद्यार्थियों और उनकी अध्यापिकाओं से परिचित होने... मिडियेटर यानी माध्यम है संस्था का पुराना कर्मचारी सुरेश बलूनी, एक ब्राह्मण। इस दिन तो सुनीता की शैक्षिक और शैक्षणिक पृष्ठभूमि से अभिभूत प्रधानाध्यापिका और शिक्षिकाएँ उससे बात करने के लिए उसे अपने पास ऑफिस में ही बिठा लेती हैं और सुरेश को बच्चों के पास काम करने के लिए

भेज देती हैं। काम खत्म करके ऑफिस में वापस लौटे सुरेश के सामने शिक्षिकाएँ सुनीता की विद्वता और ज्ञान की तारीफों के पुल बाँध देती हैं...

अगले दिन भी वह सुरेश के साथ उसी विद्यालय पहुँची। कल उसकी प्रशंसा से चिढ़े हुए सुरेश बलूनी ने आज विद्यालय पहुँचने के पहले ही उसे सख्त हिदायत दे दी कि वह आज शिक्षिकाओं के साथ बात नहीं करेगी, केवल सुरेश के साथ बच्चों की कक्षा में जाएगी।

अध्यापिकाओं ने कल की ही तरह आज भी तीनों कक्षाओं–छठवीं से आठवीं के सभी बच्चों को एक कक्षा में बिठा दिया और वे स्वयं ऑफिस में बैठकर अन्य काम करने लगीं। यहाँ के अधिकांश विद्यालयों में अलग-अलग कारणों से बच्चों की संख्या बहुत कम ही होती थी, कभी-कभी तो किसी-किसी विद्यालय में केवल दो या तीन बच्चे ही होते थे। इस विद्यालय में भी कुल मिलाकर बमुश्किल बीस-बाईस बच्चे ही रहे होंगे।

सुरेश ने बच्चों के साथ बातचीत शुरू। इससे सुनीता को पता चला कि कल सुरेश ने बच्चों को यह सिखाने के लिए कि किसी का साक्षात्कार कैसे लेते हैं, बच्चों को साक्षात्कार में पूछे जाने वाले प्रश्नों की सूची बनाने का काम दिया था, जिसे बच्चों को आज पूरा करके लाना था। लेकिन बच्चे जिस सामाजिक-आर्थिक तबके से थे, वहाँ उनके लिए यह काम तनिक कठिन था। ऐसा नहीं है कि बच्चे ऐसा करने के काबिल नहीं थे, बल्कि सच तो यह है कि परिवार को चलाने की खातिर पैसा कमाने के लिए माता-पिता के साथ काम करने में लगे रहने वाले उन बदनसीब बच्चों के पास न तो पढ़ने-लिखने के लिए पर्याप्त समय था, न सोचने-विचारने के लिए पर्याप्त अवसर। ताकतवर सवर्ण-समाज द्वारा नित्य-व्यवहार से उनके आत्म-विश्वास की उड़ाई गई धज्जियाँ जो स्मृति में साथ ही रहती।

कोई विद्यार्थी माता-पिता के साथ सब्जी या फल बेचता, कोई कूड़ा बीनने जाता, किसी को खेतों पर जाना होता था, तो किसी को पटरी किनारे पिता या भाई के साथ जूते गाँठने का काम करना होता था। कुल जमा बात यह थी कि उन बच्चों में से किसी को भी घर में पढ़ने का अवसर मुश्किल से ही मिल पाता था। जबकि सुरेश बलूनी एक ऐसे शक्तिशाली वर्ग 'ब्राह्मण-वर्ग' का व्यक्ति था, जो दावा तो करता था, सबके लिए सामाजिक-समानता और समान शिक्षा के अवसर दिए जाने का; किंतु उसकी वास्तविक मानसिकता उजागर होनी अभी बाकी थी।

सुरेश बलूनी एक औसत व्यक्तित्व का व्यक्ति था, जो इस संस्था में आने से पहले किसी और संस्था में काम करता था। उसकी शिक्षा भी स्नातक तक की थी। इस संस्था में आने के लिए आवश्यक न्यूनतम योग्यता को पूरी करने के लिए उसने आनन-फानन में अपने कई साथियों की तरह इधर-उधर से फर्जी जरूरी डिग्रियाँ हासिल की थीं, इसलिए उसके मन में कई बातों को लेकर जबर्दस्त हीन-भावना रहती थी, जो यदा-कदा प्रकट हो जाया करती थी; खासकर तब, जब कोई कायदे का पढ़ा-लिखा व्यक्ति उनके सामने होता। उसमें भी यदि कोई अच्छी-खासी पढ़ी-लिखी महिला उसके सामने आ जाए, तब उसकी हीनभावना देखते बनती थी। शायद उसके मन को कभी अपनी योग्यता का विश्वास नहीं हो सका। लेकिन उसमें अपने ब्राह्मण-पुरुष होने का गर्व-भरा एहसास और उससे उपजे जातीय-दुराग्रह भी कम नहीं थे, जो बहुत छिपाने पर भी प्रकट हो ही जाया करते थे। स्त्रियों के प्रति तो उसकी एक खास किस्म की सोच थी, जो ऐसे पुरुषों की सामान्य तौर पर होती ही है। उसका मानना था कि स्त्रियाँ कितनी भी काबिल हों और कितना भी महत्वपूर्ण काम करती हों, उनका सबसे बड़ा काम है, पुरुष की दैहिक जरूरतों को पूरा करना–यानी मनोरंजन और उपभोग की वस्तु। अपनी इस प्रवृत्ति को वह समाज से तो छिपाता था, लेकिन अपनी सहकर्मी-महिलाओं से नहीं, बल्कि अपनी उन पर तो यह अवश्य जाहिर करता था कि उसके सामने उन महिला-कर्मचारियों की कोई हैसियत नहीं है।

असल में ये दोगली प्रवृत्ति उक्त समाजसेवी-संस्था के हर सवर्ण-पुरुष की थी, ब्राह्मण-पुरुषों में तो विशेष रूप से–'सवर्ण' के रूप में भी और 'पुरुष' के रूप में भी। उनके दो चेहरे थे–एक चेहरा जो समाज के सामने दिखाया जाता था, जो बेहद मानवीय, संवेदनशील और समाज के वंचितों, गरीबों की तकलीफों पर जार-जार आँसू बहाता था; जबकि दूसरा चेहरा वह था जो संस्था के भीतर अक्सर प्रकट होता रहता था जहाँ ये लोग अपने बनावटपन का चोला उतारकर सहज-स्वाभाविक रहते थे। इस दूसरे चेहरे में 'सवर्णपन' और 'पुरुषपन' अपने एकदम नग्न-रूप

में रहते थे, जिनको ये छिपाते भी नहीं थे, बल्कि अपने अहम् की संतुष्टि के लिए जानबूझकर दिखाते थे, ताकि वंचित-तबकों के सहकर्मियों और महिला-सहकर्मियों को उनकी हैसियत बताते रहें। ये लोग यह जानते थे कि संस्था के विभिन्न स्तरों पर बैठे जिन लीडर से शिकायतें की जा सकती हैं, वे भी सवर्ण हैं और पुरुष भी और सबसे बड़ी बात कि वे भी ऐसी ही मानसिकता रखते हैं, इसलिए वंचित और महिला कर्मियों में से कोई उनके घृणित-व्यवहार या विचारों की शिकायत करके अपनी नौकरी गवाँना नहीं चाहेगा।

ये बच्चे भी उस दिन अपना उक्त होमवर्क करके नहीं आये थे, यानी किसी साक्षात्कार के दौरान पूछे जाने वाले प्रश्नों की सूची। तब सुरेश ने उनको मौखिक प्रश्न बनाने को कहा, लेकिन आत्म-विश्वास से रहित बच्चे यह भी नहीं कर पाए, केवल बेबस-दृष्टि और अपराध-भाव से कभी सुरेश का, तो कभी सुनीता का, और कभी एक-दूसरे का मुँह ताकते रहे। इसी तरह लगभग पंद्रह-बीस मिनट बीत गए। सुनीता बच्चों की समस्या समझ रही थी, क्योंकि वह भी तो ऐसी परिस्थितियों और समस्याओं से जूझते-लड़ते हुए यहाँ तक पहुँची थी। उसने अपने विद्यार्थी-जीवन में अपनी कक्षा में अपने जैसे विद्यार्थियों को भी ऐसी समस्याओं से दो-चार होते सैकड़ों बार देखा था। इसलिए वह जानती थी कि बच्चे क्यों खामोश हैं।

सुरेश की एक और खासियत थी, बच्चों के साथ काम करते समय वह समस्या को तो सामने रख देता था, लेकिन बच्चों को न तो कभी उसके समाधान के लिए प्रोत्साहित करता था, न उनका हौसला ही बढ़ाता था और न उनको समाधान तक पहुँचने के लिए कोई रास्ता ही दिखाता। वैसे भी इन बच्चों से या उनके भविष्य से उसे क्या लेना-देना, उसे तो केवल समाज-सेवा का दिखावा भर करना है, अपनी संस्था के अन्य लोगों की तरह...

सुनीता, संस्था में नई होने और उसकी कार्य-प्रणाली से अनभिज्ञ होने के कारण काफी देर तक खामोश रही। जब उससे बच्चों की बेबस आँखें सहन नहीं हुई तो उसने पहल करने की सोची और सुरेश के पास जाकर धीरे से इसकी अनुमति माँगी। सुरेश अपने मन में हँसा-"ये पिद्दी-सी लड़की क्या कर लेगी?" उसे पूरा विश्वास था कि जो काम वह स्वयं अनुभवी और काबिल होकर भी इतने समय में नहीं कर पाया, वह दिल्ली जैसे विकसित शहर में सुविधाओं के बीच रहनेवाली ये लड़की क्या कर लेगी? गाँव के बच्चों के साथ काम करना इतना आसान है क्या? बड़े-बड़ों के पसीने छूट जाते हैं। लेकिन उसके मन में सुनीता का तमाशा बनते देखने की इच्छा हुई, इसलिए उसने अनुमति दे दी।

सुनीता ने बच्चों की ओर देखकर पहले तो एक अच्छी-सी स्माइल दी, बच्चे भी प्रत्युत्तर में कुछ झिझकते हुए-से तनिक-सा मुस्कुराए। मुस्कुराए क्या, मुस्कराने का अभिनय-सा किया। फिलहाल बातचीत शुरू करने के लिए इतना भी पर्याप्त था।

"क्या आप लोग जानना नहीं चाहेंगे कि मैं कौन हूँ? कहाँ से आई हूँ? यहाँ क्यों आई हूँ? क्या करती हूँ? क्या सोचती हूँ? वगैरह-वगैरह?"

कक्षा में कुछ देर तक खामोशी रही, कोई कुछ नहीं बोला, सुनीता ने बच्चों को अपने संकोच और डर से संघर्ष करने और उससे बाहर निकलने का समय दिया। कुछ देर तक इंतजार करने के बाद उसकी बात का सहारा पाकर आठवीं कक्षा की छात्रा संध्या ने कुछ झिझकते हुए ही पूछा-"हाँ मै'म, मैं कल से जानना चाहती हूँ, आपके बारे में। लेकिन कैसे पूछती? कहीं आप गुस्सा हो जातीं और हमारी शिकायत कर देतीं, हमारी मै'म से, तो...?"

"नहीं, बच्चो, न तो मैं गुस्सा होऊँगी किसी से भी; और न ही आपकी टीचर से या किसी से भी आपकी शिकायत करूंगी। आप लोग जो भी मेरे बारे जानना चाहते हैं, इत्मिनान से पूछिए, बेखौफ होकर।" सुनीता ने बच्चों को आश्वस्त किया, बच्चों के चेहरों पर थोड़ी देर पहले दिखने वाला तनाव कुछ ढीला पड़ने लगा।

"मै'म, आपका नाम क्या है?" छठवीं कक्षा के बलदेव ने कुछ मुस्कुराकर, तो कुछ सकुचाते हुए पूछा-"मेरा नाम सुनीता है।"

"मै'म, आप पौड़ी के हो?" सातवीं कक्षा की कौशल्या भी कुछ उत्साहित-सी हुई।

"नहीं, मैं पौड़ी की रहनेवाली नहीं हूँ, बाहर से आई हूँ।" सुनीता ने जानबूझकर तत्काल अपने पिछले निवास-स्थान का नाम नहीं बताया।

"तो आप कहाँ से आये हो?" सातवीं कक्षा के छात्र संदीप को जिज्ञासा हुई। सुनीता को एक और सवाल के रूप में इसी सवाल के पूछे जाने का इंतजार था, ताकि बच्चों की जिज्ञासाएँ उनके मन से बाहर आ सकें

"मैं दिल्ली से आई हूँ"

अब बच्चे धीरे-धीरे खुलने लगे...

"मै'म, वो तो बहुत दूर है।" छठवीं कक्षा की आशिमा की आँखों में आश्चर्य साफ-साफ दिखाई दिया।

"हाँ, है तो थोड़ी दूर, लेकिन बहुत दूर नहीं, केवल थोड़ी दूर है।"

"मै'म, आप वहाँ क्या करती थीं? सातवीं कक्षा के आसिफ ने जानना चाहा।

"मैं वहाँ पढ़ती थी और बाद में पढ़ाती भी थी।"

"मै'म, आप वहाँ भी हमारे जैसे बच्चों को ही पढ़ाती थीं?" आठवीं कक्षा की निधि पूछती है।

"नहीं बच्चो, आप लोगों से थोड़े बड़े होते थे वे। वे कॉलेज में पढ़ते थे, मैं उन्हीं को पढ़ाती थी।"

"मै'म, क्या हम भी उस कॉलेज में पढ़ सकते हैं, जहाँ आप पढ़ाती थीं?" निधि के साथ बैठी उसी की सहपाठी संध्या ने कुछ सोचते हुए पूछा। उसकी आँखों में शायद कोई सपना तैर रहा था।

"बिल्कुल पढ़ सकते हैं, जरूर पढ़ सकते हैं! आप लोग किसी भी कॉलेज में पढ़ सकते हैं।"

"मै'म, मेरी बहुत इच्छा है कि मैं भी किसी अच्छे वाले बड़े-से कॉलेज में जाकर पढ़ूँ! मेरे पापा जिस दुकान में काम करते हैं, उसके मालिक का बेटा बहुत बड़े कॉलेज में पढ़ता है। मैं भी कॉलेज में पढ़ना चाहती हूँ। क्या आप मेरी मदद करोगे?" संध्या काफी उत्सुक दिखी, कॉलेज के नाम से।

"जरूर, बच्चो, ...और आप लोग यदि खुद पर विश्वास करेंगें, तो आपको किसी की भी मदद की जरूरत नहीं पड़ेगी। आप स्वयं वहाँ तक पहुँच जाएँगे। बस अपने-आप पर विश्वास करने की जरूरत है। ...और विश्वास कैसे आएगा? जब आप लोग यह सोचने लगेंगे कि जो बातें आपके मन में उठ रही हैं, वे भी सही हो सकती हैं। जैसे, जो सवाल अभी-अभी आप लोगों ने मुझसे पूछा, वे सवाल भी साक्षात्कार के सवाल हो सकते हैं, जो आपको कल सर (सुरेश की ओर हाथ से इशारा करके) के द्वारा होमवर्क में दिया गया था।"

थोड़ी देर के लिए कक्षा में खामोशी-सी छाई रही, शायद बच्चे उस होमवर्क के विषय में सोच रहे थे, जो सुरेश ने उनको कल दिया था। शायद बच्चे उस होमवर्क और अपने सवालों के परस्पर संबंधों को समझने की कोशिश कर रहे थे। सुनीता ने जानबूझकर उनको उनकी चुप्पी के साथ रहने दिया, वह चाहती थी कि बच्चे किताबी-दुनिया और वास्तविक-दुनिया के अभिन्न-संबंधों को समझ पाएँ। तभी एक छात्रा के सवाल ने उस सन्नाटे को तोड़ा...

"मै'म, क्या आप हमेशा से टीचर ही बनना चाहती थीं?" आठवीं कक्षा की छात्रा निधि को अचानक जैसे कुछ याद आया हो।

"क्या आपके पापा भी आपको टीचर ही बनाना चाहते थे?" लगे हाथ आठवीं के आफताबने भी अपनी जिज्ञासा जाहिर कर दी। शायद वह भी इस सवाल को मन में देर से रखे हुए था और सोच रहा था कि पूछे या न पूछे, लेकिन अपनी सहपाठी द्वारा पूछे जाने पर उसको जैसे बल मिला।

"हाँ, मैं हमेशा से टीचर ही बनना चाहती थी, लेकिन मेरे पिताजी मुझे जज बनाना चाहते थे। वे नहीं चाहते थे कि मैं टीचर बनूँ। जज की हमारे समाज में बहुत इज्जत होती है ना! इसलिए मेरे पिताजी मुझे जज बनाना चाहते थे।" सुनीता ने कहा।

"तो आपके पापा आपसे गुस्सा नहीं हुए, जब आपने उनको बताया कि आप टीचर बनना चाहती हैं?" छठी कक्षा के विनोद ने हैरानी से पूछा।

"हाँ, गुस्सा तो हुए, लेकिन मैंने उनसे एकदम स्पष्ट कहा कि मुझे टीचर ही बनना है और वे आखिरकार मान गए (कुछ सेकेंड रुककर) हम सबको अपने लिए खुद ही सपने देखने चाहिए ...और हमें सपने जरूर देखने चाहिए ...तभी हम अपने सपनों के लिए पूरे मन से कोशिश कर पाएँगे!" सुनीता ने बच्चों को समझाया। पिता से विद्रोह जैसी बात पर बच्चे तनिक अचंभित थे।

"आप लोगों ने भी तो सपने देखे होंगे अपने लिए!" सुनीता ने अचानक बात का रुख मोड़ दिया, अब वह सवाल करने लगी और बच्चों को जवाब देने को उकसाया।

बच्चे एकदम से चौंके और खामोश हो गए, जैसे अचानक इस धारा-परिवर्तन से उनके मष्तिष्क में खलबली मच गई हो और वे समझ नहीं पा रहे हों कि वे किस दिशा में हैं। अथवा उनकी दुखती रग पर जैसे किसी ने हौले-से हाथ रख दिया हो, जिससे उनका दर्द एकदम से उभर गया हो और साथ ही जिसमें कोई लेप-सा रखने का एहसास भी शामिल हो; जिससे वे आहत भी हो गए हों और कोई राहत-सी भी मिली हो। शायद पहली बार उन हालात के मारे बच्चों से किसी ने उनके सपनों के बारे

में पूछा था। उनको उत्साहित करने के लिए सुनीता ने अपनी बात दुहराई–"बताइए बच्चो! जरूर आप सबने भी कोई-न-कोई सपना देखा ही होगा अपने लिए। चलिए, आज हम इसी विषय में बात करते हैं कि आप लोग क्या करना चाहते हैं बड़े होकर।"

अचानक सुरेश पर नजर पड़ने पर सुनीता ने देखा कि उसके चेहरे पर कुछ अलग-सी रेखाएँ उभरने लगीं थी, लेकिन ये कैसी रेखाएँ थीं और क्यों, यह वह समझ नहीं पाई, इसलिए उसने उधर से ध्यान हटाकर बच्चों के सामने अपना प्रश्न दुहरा दिया–"तो सभी एक-एक करके बताइए... बड़े होकर कौन क्या करना चाहता है?"

सुनीता जानती थी कि इस काम में काफी कोशिश की जरूरत थी, इसलिए उनसे धैर्य से बच्चों के उत्तर की प्रतीक्षा की। लगभग आधे-पौन मिनट तक कक्षा में सन्नाटा पसरा रहा, बच्चों के चेहरों पर अनेक भाव आ-जा रहे थे, जैसे वे भीतर-ही-भीतर अपने-आप से संघर्ष कर रहे हों। शायद वे सोच रहे थे कि अपने सपनों के बारे में कहें या न कहें। उनके जीवन में यह पहला मौका था जब किसी ने उनके सपनों के बारे में उनसे पूछा था। कोशिश आखिरकार रंग लाई, लगभग आधे-पौन मिनट के इंतजार के बाद एक जवाब आया, संदीप की कुछ उत्साहित-सी आवाज ने सन्नाटे को भंग करके सबको चौंका दिया–"मै'म, मैं फौज में जाऊँगा, दुश्मनों के छक्के छुड़ा दूँगा मैं तो वहाँ ....!" इस शुरुआत के बाद तो जैसे झड़ी लग गई।

"मै'म, मैं टीचर बनना चाहती हूँ। मुझे मेरी साधना मै'म, बहुत अच्छी लगती हैं, वे हमको बहुत प्यार करती हैं और हमें बहुत सारी नई चीजें सिखाती हैं। मैं भी उन्हीं की तरह अच्छी टीचर बनना चाहती हूँ। मैं बच्चों को प्यार से पढ़ाऊँगी और उनको मारूँगी भी नहीं, और न डाँटूँगी!" अपने सहपाठी की पहल से कौशल्या को भी बोलने का हौसला मिला

"मै'म, मैं बड़ा होकर वो वाली पढ़ाई करूँगा, जिसमें पुल बनाते हैं। वो देखिए मै'म'', एक बच्चे ने सामने श्रीनगर की ओर जाने वाले पहाड़ों में काटकर बने रास्ते की ओर उंगली से इशारा करते हुए कहा–"श्रीनगर कितना नजदीक है, लेकिन हमें पहाड़-पहाड़ होते हुए जाना पड़ता है, बहुत ज्यादा घूमकर, तीस किलोमीटर से भी अधिक। इसलिए श्रीनगर पहुँचने में बहुत अधिक समय लगता है, कभी-कभी एक घंटे से भी ज्यादा। मैं पौड़ी से श्रीनगर तक यहाँ से'' उसने फिर ऊँगली से उस तरफ इशारा करते हुए कहा–"सीधा पुल बनाऊँगा, फिर हम जल्दी पहुँच जाएँगे, क्योंकि तब हमको बहुत कम चलना पड़ेगा, केवल तीन-चार किलोमीटर।" उसने अपनी चहकती आवाज में आगे कहा–"फिर तो हम श्रीनगर पैदल भी चले जाएँगे, घूमते हुए। मैंने टीवी में ऐसा पुल देखा है, बहुत मजा आता है, मै'म, ऊपर से देखने पर। फिर सब लोग पहाड़ को ऊपर से देख सकेंगे, बहुत मजा आएगा।" सूरज ने धारा प्रवाह अपने दिल की बात कह दी, उत्साह से खिले उसके चेहरे की चमक देखने लायक थी।

"मै'म, मैं डॉक्टर बनना चाहती हूँ... पौड़ी में अच्छे डॉक्टर नहीं हैं... जो हैं, वे बहुत अधिक पैसा लेते हैं, इसलिए कई बार मैं या मेरी मम्मी बीमार पड़ते हैं तो हम हॉस्पिटल भी नहीं जाते हैं। जिला अस्पताल में तो बहुत भीड़ होती है, हमको घंटों लाइन में खड़ा रहना पड़ता है। इसलिए मैं खूब पढ़ूँगी और अच्छी डॉक्टर बनूँगी और सबका मुफ्त में इलाज करूँगी।" छठवीं कक्षा की सपना ने अपने सोये हुए सपने को जैसे हौले-से थपथपाया हो।

"मैं तो पुलिस बनूँगा, मै'म! मैं तो सबकी रक्षा करूँगा। अपने दोस्तों को बाघों से भी बचाऊँगा और बदमाशों से भी।" छठी कक्षा के रोहित की अपनी सीट पर ही बैठे-बैठे फड़कती भुजाएँ और चेहरे पर खिलता आत्मविश्वास कह रहा था, जैसे वह आज ही पुलिस बनकर मानेगा, थोड़ी देर पहले दिखने वाली दीनता अब उसके चेहरे से भी नदारद थी

तभी अचानक कक्षा में एक विस्फोट-सा हुआ...! बच्चों की शिक्षा के लिए काम करनेवाली संस्था के समाज-सुधारक और उस समय अपनी संस्था का प्रतिनिधि सुरेश बलूनी की गरजती आवाज कक्षा में गूँज रही थी...

"अच्छा! तुम सब टीचर, इंजीनियर, फौजी या डॉक्टर ही क्यों बनना चाहते हो? तुममें से किसी ने भी ये क्यों नहीं कहा कि वो सफाईकर्मी या किसान बनना चाहता है? क्या सफाईकर्मी या किसान बनना बुरी बात है?"

अचानक जैसे सुन्दर सपनों में खोये बच्चों के ऊपर किसी ने खौलता पानी डाल दिया हो। सुरेश लगभग चीखते हुए कठोर-कर्कश भाषा में बच्चों को लगभग डाँट रहा था। बच्चे अचानक इस विस्फोट से सन्नाटे में आ गए, जैसे उनके हाथों कोई बड़ा भारी अपराध

हो गया हो। भयभीत आँखों से सुरेश की ओर देखने लगे। सुनीता भी डर गई, उसे तत्काल यही लगा कि उससे अंजाने में कोई अपराध हो गया, कोई बड़ा अपराध! बच्चे और सुनीता, दोनों ही सकते में थे। लेकिन उनमें से किसी को समझ में नहीं आया कि उन्होंने क्या गलती की, सबसे अधिक सुनीता असमंजस में थी और कुछ डरी हुई भी, लेकिन विस्फोट की गर्जना अपने रौ में थी।

"क्या तुम लोग नहीं जानते कि सफाईकर्मी या किसान बनना ही सबसे अधिक जरूरी काम है? तो तुममें से किसी ने भी क्यों नहीं कहा कि वो सफाईकर्मी या किसान बनना चाहता है?"

सुरेश उसी तरह गरज रहा था, बच्चों की आँखों में थोड़ी देर पहले तक दिखने वाली स्वप्निल चमक गायब थी, उसकी जगह अब भय की रेखाएँ खिंच गयीं थीं। सुरेश ने चोर नजर से सुनीता की ओर देखते हुए नि:संकोच निर्णय-सा सुनाया– "एक बात तुम लोगों को अच्छी तरह समझ लेना चाहिए कि पढ़े-लिखे लोग ही सबसे ज्यादा अपराध करते हैं! हमारे समाज को पढ़े-लिखे लोगों की कोई जरूरत नहीं है। जितने भी बड़े-बड़े अपराध हैं, वो सब ये पढ़े-लिखे लोग ही करते है।" बोलते हुए वह तत्काल संभला और स्थिति को भाँपकर और इस डर से कि कहीं उसकी तेज और कठोर आवाज सुनकर बगल के कमरे में बैठी बच्चों की अध्यापिकाएँ वहाँ न आ जायँ और उसके व्यवहार पर ऐतराज न करने लगें, सुरेश ने अपनी आवाज को तनिक मुलायम बनाने की कोशिश की, किंतु उसकी वाणी की तिक्तता और कठोरता यथावत् कायम रही, केवल स्वर तनिक धीमा हुआ–"अब एक बात तुम लोग बताओ मुझे डॉक्टर की जरूरत हमें कब पड़ती है?"

सहमे हुए बच्चे खामोश रहे, केवल रह-रहकर सुनीता की ओर देख रहे थे, लेकिन किसी भी विद्यार्थी ने एक भी शब्द कहने की हिम्मत नहीं की। सुनीता भी खामोश थी, एक तो उसको समझ में ही नहीं आ रहा था कि गलती कहाँ और क्या हुई, और दूसरे, उसे डर लगा कि कहीं इस समय बीच में बोलने या सुरेश को टोकने से उसकी इस नई-नई नौकरी पर खतरा न पैदा हो जाए, आखिर सुरेश यहाँ का स्थापित और पुराना स्थानीय कर्मचारी है। सुरेश अब उस शातिर बिल्ली की तरह खेलने लगा, जो अपने अर्द्ध-मृत शिकार चूहे को खाने से पहले उससे खेलती है

"जब हम बीमार पड़ते हैं।" बच्चों को खामोश देखकर सुरेश ने स्वयं ही अपने सवाल का जवाब दिया। लेकिन उसके जवाब पर भी डरे हुए बच्चे चुप रहे, 'हाँ' 'ना' कुछ भी नहीं कहा। इसकी परवाह किए बिना सुरेश का सवाल करना और स्वयं उनके जवाब देना जारी रहा– "और हम बीमार क्यों पड़ते हैं?" वह कुछ सेकेंड रुका और फिर आगे बोलना शुरू किया– "गंदगी के कारण!" अपने सवाल का स्वयं ही जवाब दे-देकर संतुष्ट सुरेश को विश्वास हो गया कि वह तार्किक बात कर रहा है–"बोलो! क्या मैं सही नहीं कह रहा हूँ?" अब उसने बच्चों से भी अपनी बात का समर्थन करवाने के लिए उन पर परोक्षत: दबाव डालना शुरू किया।

"जी!" इस बार बच्चे बोले, डरे हुए बच्चे समर्थन करने को बाध्य थे।

"और यदि गंदगी न रहे, तो कोई बीमार पड़ेगा...?"

"नहीं!" बेबस बच्चे समवेत स्वर में समर्थन करने लगे, थोड़ी देर पहले बच्चों के सपनों से आहत सुरेश के चेहरे पर छाए तनाव के चिह्न अब कम होने लगे और उसकी जगह स्वादिष्ट भोजन कर रहे व्यक्ति की-सी संतुष्टि अपनी जगह बनाने लगी।

"तो गंदगी साफ कौन करेगा?... सफाईकर्मी...!" सवाल और जवाब का यह खेल सुरेश पूरी सफलतापूर्वक खेल रहा था, जिसमें सवाल भी उसके थे और जवाब भी उसी के तय किए हुए थे।

"जी!" बच्चे केवल समर्थन करने को मजबूर थे।

"तो जरूरत किसकी है? सफाईकर्मी की!" अब सुरेश के चेहरे पर कुटिल संतुष्टि का भाव साफ-साफ देखा जा सकता था।

"और जब बहुत सारे सफाईकर्मी होंगे और वे सब अपना काम ईमानदारी से करेंगे, तो क्या कोई भी बीमार पड़ेगा? नहीं! और जब कोई बीमार ही नहीं पड़ेगा, तो क्या डॉक्टर की जरूरत पड़ेगी?... नहीं! इसलिए हमें डॉक्टर की नहीं, सफाईकर्मी की जरूरत है। हमारे प्रधानमंत्रीजी भी तो यही कहते हैं! है ना?" बच्चों को इस प्रकार सपनों का नया पाठ पढ़ाया जाता देख सुनीता हैरान थी।

"जी!" उन्होंने वह कहा जो कहने के लिए बच्चे बेबस थे। सुरेश ने अपनी बात जारी रखी।

"और... इसके अलावा, स्वस्थ रहने के लिए अच्छा खाना खाने की जरूरत

होती है। बोलो होती है या नहीं?"

"जी!"

"और खाना कहाँ से आता है? खेत से। खेत में अनाज कौन पैदा करता है? किसान। और यदि किसान न हो, तो क्या होगा? अनाज पैदा नहीं होगा। अनाज पैदा नहीं होगा, तो लोग भूख से बीमार पड़ेंगें! तो किसकी जरूरत है? किसान की, जो अनाज पैदा कर सके। क्यों? क्या सही नहीं कहा मैंने?" सुरेश अब यह खेल एक माहिर खिलाड़ी की तरह खेल रहा था, अपने गढ़े गए सवालों और जवाबों का वह बड़ी चतुराई से प्रयोग कर रहा था।

"जी!"

"और एक बात बताओ, जब हमें भरपेट खाने को मिलेगा और चारों तरफ अच्छी साफ-सफाई रहेगी, तो आदमी स्वस्थ रहेगा ही! और जब सब लोग स्वस्थ रहेंगे, तो कोई भी तीन-चार क्या, तीस-चालीस किलोमीटर भी पैदल चल सकता है। और पैदल चलना तो सेहत के लिए बहुत फायदेमंद होता है! बाबा योग वाले और दूसरे लोग भी तो कहते हैं! तो पौड़ी से श्रीनगर पुल बनाने की कोई जरूरत नहीं है।" सुरेश ने जैसे अपना फैसला सुनाया, जैसे उसे भय हो कि कहीं वह बच्चा कल ही पौड़ी से श्रीनगर तक पुल न बना दे। उसकी बात में 'हाँ' में 'हाँ' मिलाने के अलावा कोई और विकल्प बच्चों के पास था ही नहीं, उन्हें मानना ही था।

"जी!" बच्चों ने उसकी हाँ में हाँ मिलाई।

अब उसने पूरे संतुष्ट-भाव से आँखों में जीत का गर्व भरकर रीढ़ को एकदम तानकर सीधा बैठते हुए सुनीता की तरफ देखा और इसी के साथ उसके सवालों का रुख भी बदल गया।

"और तुम लोग तो देखते ही हो टीवी में कि जितने बड़े-बड़े क्राइम हैं, जितने बड़े-बड़े घोटाले हैं, वो सब पढ़े-लिखे लोग ही करते हैं, इसलिए आदमी यदि नहीं भी पढ़ेगा, तो भी कुछ नुकसान नहीं होगा। इसलिए टीचर या प्रोफेसर की भी हमारे समाज को खास जरूरत नहीं है। टीचर या प्रोफेसर बनने से ज्यादा जरूरी है अच्छा इंसान बनना। और यदि सब लोग अच्छे इंसान बन जाएँगें, तो पुलिस और फौज की भी जरूरत नहीं पड़ेगी, इसलिए तुम्हारा सपना पुलिस या फौजी अथवा जज बनने का भी नहीं होना चाहिए।"

उसका निशाना था सुनीता की उच्च-शिक्षा पर परोक्षत: व्यंग्य करना और उसका प्रभाव सुनीता के दिलो दिमाग पर होता हुआ देखना। असल में उसकी यह भी एक खासियत थी कि वह जब अपने किसी विरोधी या जिसे वह नापसंद करता था, उसके खिलाफ कोई जाल बुनता था और उक्त विरोधी को उसकी मजबूरी का एहसास दिलाना चाहता था तो वह ऐसी ही चोर-नजर से उसकी ओर देखता। उसके तर्कों से हैरान सुनीता को अब उसकी नीयत पर संदेह होने लगा।

"जी!" उसके सवालों-जवाबों पर बच्चों का पहले की ही तरह बेबस समवेत स्वर "...इसलिए तुम सबको केवल किसान या सफाईकर्मी बनने का ही सपना देखना चाहिए! वही तुम सबके लिए सबसे सही है!" सुरेश का मंतव्य अब स्पष्ट होने लगा था।

"जी!" पीढ़ियों से डरे-डराए गए वंचित-बच्चे सुरेश की बातों का केवल समर्थन करते रहे।

कक्षा में बच्चों की 'शिक्षा को बढ़ावा' देकर 'सस्टेनेबल सोसाइटी' बनाने का यह कार्यक्रम लगभग डेढ़-दो घंटे तक चला। उसके बाद सुरेश और सुनीता वहाँ से निकलकर ऑफिस बैठी अध्यापिकाओं से अनुमति लेकर अपने ऑफिस की ओर चले। सुनीता के मन में गहरी उथल-पुथल मची हुई थी, उसके मन में दर्जनों प्रश्न घूम रहे थे—कि सुरेश ने ऐसा क्यों किया? कि यदि सभी बच्चों को सपने देखने का हक है तो बच्चों को सुरेश ने क्यों रोका? कि यदि उक्त संस्था बच्चों की शिक्षा के लिए काम रही थी तो फिर इस व्यवहार का मतलब क्या था? सुनीता ने अपने मन में चल रही उथल-पुथल से परेशान होकर थोड़ी देर खामोश रहने के बाद अपने मन की शंकाओं को सुरेश के सामने रखना चाहा।

"सर, आपने बच्चों को सपने देखने से क्यों रोका?"

"रोका कहाँ मैंने? उनको सपने देखने को तो मैंने कहा ही! सपने देखें, खूब देखें, ...लेकिन सफाईकर्मी या किसान बनने के सपने देखें!" सुरेश ने आत्मविश्वास-भरी कुटिलता से कहा।

"लेकिन क्यों उनको केवल सफाई-कर्मी या किसान बनने का ही सपना देखना चाहिए, कोई और सपना क्यों नहीं? सुनीता के स्वर में आरोप था, जिसे सुरेश ने बखूबी भाँप लिया, लेकिन वह अपनी ताकत और निर्बाध अधि कारों के प्रति अति-आश्वस्त था, जो समाज के केवल कुछ लोगों या समुदायों को ही परंपरागत रूप से हासिल रहे हैं।

"क्योंकि यही काम उनके समाज के लोग करते हैं।" वह कुछ पल

रुककर आगे बोला–"और सफाई करना कोई बुरी बात थोड़े ना है, सुनीता? कोई भी काम बड़ा या छोटा नहीं होता, सब काम बराबर होते हैं।" आरोप से विचलित हुए बिना ही सुरेश ने बड़ी ही ढिठाई और कुटिलता से जवाब दिया, हालाँकि उसे एक महिला को सफाई देना नागँवार गुजर रहा था।

"यदि सभी काम बराबर होते हैं, तो वे बच्चे क्यों सफाईकर्मी और किसान बनने के अलावा कोई दूसरा सपना नहीं देख सकते? क्या सामान्य वर्गों के बच्चों को भी आप सफाईकर्मी और किसान बनने की नसीहत देंगे?" सुनीता के स्वर में दु:ख-जनित आक्रोश आने लगा था।

अपनी उम्मीद के विपरीत उसे संस्था का यह एक नया चेहरा देखना बेहद कष्टदायी था। संस्था शिक्षा के क्षेत्र में महान कार्य कर रही थी, इस बात से प्रभावित होकर इसमें आई थी। संस्था पर उसके विश्वास को ठेस लगी, वह असमंजस में थी। पता नहीं यह संस्था का विचार है या केवल सुरेश की ही सोच ऐसी है... उसके मनोभावों को महसूस करते हुए सुरेश ने तत्काल अपना पैंतरा बदला।

"अरे सुनीता, तुम समझीं नहीं... मैं ये कह रहा हूँ कि ये बच्चे गरीब हैं, ऊँची पढ़ाई और ऊँचे सपने के लिए काफी पैसा लगता है, इनके गरीब माँ-बाप कहाँ से उतने पैसे लाएँगे, तुम जरा ठंढे दिमाग से सोचो!"

विश्वास पर पड़ी चोट से आहत सुनीता ने तनिक गुस्से में कह दिया–"ये तो इनके माता-पिता को सोचना है ना। सर! हमें इसकी चिंता करने की बजाय इनकी पढ़ाई-लिखाई पर ध्यान देना क्या ज्यादा ठीक नहीं होगा? हमारा काम तो बच्चों को सपने दिखाना और उसके लिए मेहनत करने को प्रेरित करना ही है, है ना? उनके भविष्य के लिए पैसों की व्यवस्था तो दूसरी समस्या है। वैसे भी जब कोई भविष्य के लिए सपने बुनता है, तभी वह उसके लिए कोशिश भी करता है। यदि कोई सपने ही नहीं देखेगा तो किस बात के लिए मेहनत करेगा?" वह एक साँस में कह गई।

उसके क्रोध-भरे तर्क सुन सुरेश आपे से बाहर हो गया और उसी क्रोध में झल्लाकर अपने मन का वह कलुष सत्य उगल दिया, जो उसके समाज की विशेषता है–"अरे तुम समझती क्यों नहीं, सुनीता! ये बच्चे जिस समाज के हैं, यदि वे भी हमारी तरह बड़े-बड़े सपने देखने लगेंगे, तो हमारे समाज के लिए खतरा पैदा कर देंगें; फिर हमारे बच्चों का और हमारे समाज का क्या होगा? वैसे भी इन आरक्षणवालों के कारण हर चीज पर हमारा अधिकार आधा रह गया है, इसलिए यही अच्छा होगा कि ये बच्चे केवल सफाईकर्मी या किसान बनने का ही सपना देखें। हमारे लिए भी यही ठीक है और इनके लिए भी यही ठीक होगा।" कहते हुए उसने अपने स्वर को संयमित किया। समाज में इससे शांति और संतुलन बना रहता है। मैंने इसीलिए उनको कोई और सपना देखने से मना किया।"

सुनीता की बात ने सुरेश बलूनी की उस रग पर हाथ रख दिया था, जो उसके ब्राह्मण-वर्ग के अधिकांश लोगों की दुखती रग थी और जो संविधान में वंचित-समाजों के लिए 'आरक्षण' के प्रावधान से चोटिल थी। साथ ही, ब्राह्मण होने के कारण परंपरागत रूप से उसमें मौजूद दु:साहस के बल पर ये बातें उसने इतनी बेबाकी से कह भी दी। इतना ही नहीं, निश्चित रूप से उच्च-शिक्षित सुनीता की अकादमिक उपलब्धियों को देखकर संस्था के अन्य लोगों की तरह उसने भी यह मान लिया था कि वह भी सवर्ण-समाज से है, संस्था ने उसके सेलेक्शन के दौरान उससे उसकी जाति नहीं पूछी थी, इसलिए कोई नहीं जानता था कि वह वंचित-समाज की बेटी है,सवर्ण नहीं। और सवर्ण-समाज का यह अंधा विश्वास है कि 'मेरिट' यानी काबिलियत केवल सवर्णों के पास होती है, दलितों-आदिवासियों के पास कोई मेरिट नहीं होती। शायद इसीलिए वह इतनी बेबाकी से ये बातें उससे कह गया।

अब तक सुनीता उस ब्राह्मण-पुरुष के मन के चोर को साफ-साफ देख चुकी थी और समझ चुकी थी कि अन्य ब्राह्मणों की तरह सुरेश बलूनी भी 'समाजसेवक' का मुखौटा पहनकर वंचित वर्गीय-बच्चों के सपनों की हत्या विभिन्न पैंतरों से करने की कोशिश में लगा हुआ है। अभी भी सुनीता के लिए इस संस्था के असली चरित्र को समझना बाकी था, इसलिए उसने पूछा–"हमारी संस्था तो समाज के सभी बच्चों की शिक्षा के लिए काम करती है ना?"

उसके इस प्रश्न से सुरेश भड़क गया और उसकी भाषा धमकाने वाली हो गई–"देखो मैडम, (चलते-चलते रुककर उसे ऊँगली दिखाते हुए) तुम्हें इतना अधिक सोचने की जरूरत नहीं

शेष भाग पृष्ठ 68

'ओरिजिन' निदेशक एवा दुवने, निर्देशक थरुन थंकाचन की फिल्म "Beyond the Unwritten", निर्देशक राम दास की फिल्म "Sathyappullu", निदेशक के. एस. किरण की फिल्म "Danshur" का प्रदर्शन किया गया।

महासंगीति के गुरु घासीदास सभागार में 'युवा अनुसंधान कारवां' का आयोजन किया गया। युवा शोधार्थियों द्वारा विभिन्नत सामाजिक विज्ञान विषयों में विषय विशेषज्ञ मू. के एस चौहान, मू. आर एस राम, प्रो. नीलिमा बागड़े के समक्ष प्रस्तुत किये गए। दिल्ली विश्वविद्यालय के राजनीति विभाग से मू. शिव पीलवान, दिल्ली विश्वविद्यालय के अर्थशास्त्र विभाग से पी.एचडी शोधार्थी मू. वैभव खरात, दारून हूदा इस्लोमिक विश्व विद्यालय से हसनूर इस्लाम, मदरसा तूल फरीया, पश्चिम बंगाल से ए के शराफत, इंदिरा गांधी राष्ट्रीय जनजाति विश्वविद्यालय, अमरकंटक से हेमचंद खोबर्डे, दिल्ली विश्वविद्यालय के राजनीति अनुभाग से मानव गावडे ने अपने-अपने शोधपत्र का वाचन किया। इस कार्यक्रम का मुख्य उद्देश्य युवाओं को सामाजिक परिवर्तन हेतु अनुसंधान के लिए प्रेरित करना था।

अजंता कला दालन में चित्रकला और शिल्पकला का विशेष प्रदर्शनी लगाई गई । इसमें मूलनिवासी नंदकुमार जोगदंड (प्रसिद्ध चित्रकार), मूलनिवासी महेंद्र खाजेकर (प्रसिद्ध रंगोलीकार एवं चित्रकार), मूलनिवासी ज्योति अबूटे (प्रसिद्ध शिल्पकार), मूलनिवासी अंकुश बनसोडे (प्रसिद्ध चित्रकार एवं रंगोलीकार) ने विशेष भूमिका निभाई।

सभी राज्यों के प्रतिनिधियों ने राज्यवार कलाचारिक झांकी का आयोजन जलूस में किया। यह जलूस बाबा साहेब डॉ. आंबेडकर की मूर्ति, सांची से सांची स्तूप तक अपने-अपने राज्यों के पारंपरिक वेशभूषा और गीत-संगीत के साथ निकाला गया, जो उत्कृष्ट सभ्यता रैली के रूप में सुशोभित हो रही थी।

मुख्य पंडाल में पंजाब राज्य द्वारा प्रस्तुत नाटक 'बाबासाहेब' और दिल्ली राज्य द्वारा प्रस्तुत नाटक 'गुलामी' का मंचन किया गया। शाम को प्रख्यात फूले-अंबेडकरवादी रैप गायक विपिन तातड और साथियों की प्रस्तुति मुख्य आकर्षण रही।

कलाचारिक प्रस्तुति के साथ विशेष प्रस्तुति के लिए विभिन्न राज्यों के कलाकारों एवं प्रतिनिधियों को सम्मानित एवं पुरस्कृत किया गया। समापन सत्र में मूलनिवासी सुनील कुमार (राष्ट्रीय अध्यक्ष , मूलनिवासी सभ्यता संघ) द्वारा लोगों को संघ की ओर से विशेष संदेश दिया गया। अंत में मूलनिवासी अजय कुमार मांझी (राज्य अध्यक्ष, मूलनिवासी सभ्यता संघ, मध्य प्रदेश) द्वारा लोगों का आभार व्यक्त किया गया और कार्यक्रम की समाप्ति की घोषणा की गई।

शेष भाग पृष्ठ 65

लगता है कि तुमने शायद अभी तक काम नहीं किया है समाज में उतरकर; इसलिए तुम समाज को ठीक से नहीं समझती हो। अभी तुम्हें बहुत कुछ सीखने की जरूरत है! लगता है कि तुम्हारे पास केवल कागजी-डिग्रियाँ ही हैं, समाज की समझ नहीं है तुम्हें। अब तुम यहाँ आ ही गई हो, तो मैं ध ीरे-धीरे सब सिखा दूँगा। तुमने अभी तक केवल यूनिवर्सिटी में काम किया है, और मैं जानता हूँ कि वहाँ कितना और क्या काम होता है। असली काम तुम यहाँ देखोगी और वह मैं तुम्हें सिखाऊँगा, इसलिए अभी तुम केवल चुपचाप देखा करो, मेरे काम में टाँग अड़ाने या ज्यादा बोलने की जरूरत नहीं है, जैसा तुमने आज किया! समझी? एनजीओ में अलग तरीके से काम होता है, यदि तुम्हें यहाँ रहना है, तो तुम्हें कुछ भी बोलने की बजाय जैसा मैं कहूँगा, वैसा ही करना होगा! तुम समझ ही रही होगी कि मैं क्या कह रहा हूँ।" एक साँस में सुरेश बहुत-सी बातें कह गया। उसके आहत अभिमान ने सुनीता को उसकी 'हैसियत', बतौर महिला और बतौर नई कर्मचारी,समझाते हुए और संस्था में अपनी ताकत का एहसास कराते हुए अपना फैसला सुना दिया। सुनीता अब इस संस्था में आने को लेकर असमंजस में पड़ चुकी थी, 'एजुकेशन फॉर सस्टेनेबल एंडइक्वेटेबल सोसाइटी' का नारा बुलंद करनेवाली यह संस्था किस तरह की 'सस्टेनेबल सोसाइटी' बनाने की कोशिश में है? क्या कोई समाज ऐसे ही 'सस्टेन' करेगा, जिसमें वंचित तबका अपने विरुद्ध हो रहे अन्याय और अत्याचार के विरुद्ध सतत खमोशी की चादर ओढ़े रहे और सुरेश जैसे लोग 'समाज-सेवक', 'समाज-सुधारक' का चमकदार मुखौटा पहने हुए उन बेबस इंसानों के कल्याण के नाम पर अपनी मोटी कमाई करते हुए शान से घूमते रहें?❑